[2021] 10 एस सी आर 460

शांताबेन भूरभाई भूरिया

अन्य

आनंद अथबाई चौधरी और अन्य

(2021 की आपराधिक अपील संख्या 967)

26 अक्टूबर, 2021

[एम. आर. शाह और अनिरुद्ध बोस, जे. जे.]

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989-एस. 14 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 एस. एस. के संशोधन द्वारा जोड़ा गया। 207 , 209 , 193 , 482 – अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध-एस के लिए दूसरा प्रावधान। 14 यू/एस द्वारा गठित विशेष न्यायालय को शक्तियाँ प्रदान करता है। 14 सीधे भी

ऐसे अपराधों का संज्ञान लेना-मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेना और उसके बाद विशेष न्यायालय आपराधिक को सौंपा गया मामला

कार्यवाही, यदि दूषित की जाती है-उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया और प्राथमिकी को रद्द कर दिया

साथ ही मजिस्ट्रेट द्वारा आई. पी. सी. के साथ-साथ अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए संज्ञान लेते हुए और समन जारी करने का आदेश-मूल सूचना देने वाले/शिकायतकर्ता की अपील पर, अभिनिर्धारित किया गया: यह नहीं कहा जा सकता है कि एस के लिए परंतुक। 14 मजिस्ट्रेट का संज्ञान लेने और उसके बाद अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए मुकदमे के लिए विशेष अदालत को मामला सौंपने का अधिकार क्षेत्र छीन लेता है-केवल इसलिए कि मजिस्ट्रेट ने अपराधों का संज्ञान लिया था और उसके बाद मामला विशेष अदालत को सौंप दिया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी और आरोप सहित पूरी आपराधिक कार्यवाही

पत्रक आदि दूषित किए जाते हैं-जब तक कि अधिकार जो एस से प्रवाहित नहीं होते हैं। 14 अत्याचार अधिनियम से प्रभावित होते हैं, यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधों का संज्ञान लेते हुए आरोपी पूर्वाग्रह से ग्रस्त है

अत्याचार अधिनियम के तहत और उसके बाद विशेष अदालत को मामला सौंपना-अभियुक्तों के खिलाफ अपराधों के लिए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने वाला विवादित फैसला। 452 , 323 , 325 , 504 , 506 (2) , 114 , आई. पी. सी. और एस. 3 (1) (x) अत्याचार अधिनियम की धारा, अभियुक्त पर अधिकार क्षेत्र वाले विशेष न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाने को अलग करती है-दंड संहिता,

1860 – एसएस। 452 , 323 , 325 , 504 , 506 (2) और 114-भारत का संविधान-अनुच्छेद 226-अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति

(अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - एस. 14-चर्चा का उद्देश्य और उद्देश्य।

460 शांताबेन भुवनेश्वर बनाम। आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 14-संशोधन से पहले और बाद में-चर्चा-अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अनुसूचित जनजातियों की रोकथाम)

अत्याचार) संशोधन अधिनियम, 2015।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - s.482-आयोजित: शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है। s.482 चालू

एफ. आई. आर. दर्ज करने में देरी का आधार।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - s.197-यदि लागू हो तो अभियुक्त के खिलाफ गंभीर आरोप-पुलिस अधिकारी के दुरुपयोग

धारित शक्तियाँ: यह बहस योग्य है कि क्या इन कृत्यों का आरोप लगाया गया है

अभियुक्त द्वारा किए गए कार्य को आधिकारिक कर्तव्यों का हिस्सा कहा जा सकता है और इस प्रकार यदि अधिकार यू/एस हैं। 197 लागू होगा-इसके अलावा, अभियोजन के लिए मंजूरी की कमी। 197 आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है s.482, सीआरपीसी।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-ss. 460 , 190 – आयोजित किया गया: यहाँ तक कि एस पर भी विचार कर रहे हैं। 460 , यदि कोई मजिस्ट्रेट लेने के लिए सशक्त नहीं है

एस की उप-धारा (1) के खंड (ए) या (बी) के तहत किसी अपराध का संज्ञान। 190 , संज्ञान लेता है, इस तरह की अनियमितताएं दूषित नहीं होती हैं

कार्यवाही।

शब्द और वाक्यांश "केवल", एस के दूसरे परंतुक में गायब हैं। 14

- विधानमंडल का आशय-अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 पर चर्चा-एस. 14 .

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

पकड़नाः 1.1 धारा 14 को शामिल करने का उद्देश्य और उद्देश्य अत्याचार के तहत अपराधों के लिए त्वरित सुनवाई प्रदान करना है।

अधिनियम, 1989 और मजिस्ट्रेट द्वारा विशेष न्यायालय/सत्र न्यायालय में अपराध करने से होने वाली देरी से बचने के लिए। [पैरा 8.2] [478-जी]

रतिराम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य

(2012) 4 एस. सी. सी. 516 में सूचित किया गयाः [2012] 3 एससीआर 496 -

पर भरोसा किया।

1.2 अत्याचार अधिनियम की धारा 14 का दूसरा प्रावधान जिसे 2016 के अधिनियम 1 द्वारा अंतःस्थापित किया गया है।

इस उद्देश्य के लिए इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट विशेष न्यायालय पर [2021] 10 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

त्वरित सुनवाई का प्रावधान करने के लिए भी अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति होगी।

मुकदमे में, यह नहीं कहा जा सकता है कि एफ. आई. आर. और आरोप पत्र आदि सहित पूरी आपराधिक कार्यवाही दूषित है और उपरोक्त आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 452,323,325,504,506 (2) और 114 के तहत और अत्याचार अधिनियम की धारा 3 (1) (x) के तहत अपराधों के लिए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया जाना है। धारा 14 में परंतुक को शामिल करने के लिए अत्याचार अधिनियम और उस उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार करते हुए, जिसके लिए अत्याचार अधिनियम की धारा 14 का प्रावधान जोड़ा गया है, अर्थात त्वरित सुनवाई का प्रावधान करने के उद्देश्य से और ऊपर बताए गए उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार करते हुए, यह सलाह दी जाती है कि न्यायालय धारा 14 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस तरह से स्थापित या निर्दिष्ट हो, ताकि त्वरित सुनवाई का प्रावधान किया जा सके।

अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान। लेकिन इस पर साथ ही, केवल इस आधार पर कि अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान सीधे अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के तहत गठित विशेष न्यायालय द्वारा नहीं लिया जाता है, पूरी आपराधिक कार्यवाही को दूषित नहीं कहा जा सकता है और इसे रद्द नहीं किया जा सकता है और केवल इस आधार पर अलग रखा जा सकता है कि

मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 14 में दूसरा परन्तुक डालने के बाद संज्ञान लिया गया है जो विशेष न्यायालय को भी अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करता है और उसके बाद मामला विशेष न्यायालय/सत्र न्यायालय को सौंपा जाता है। [पैरा 9.1] [479-सी-एच; 480-ए-बी]

1.3 उपरोक्त निष्कर्ष के समर्थन में, धारा 14 के दूसरे परंतुक में उपयोग किए गए शब्दों पर विचार किया जाना आवश्यक है।

सूक्ष्मता से। "केवल" शब्द स्पष्ट रूप से गायब है। यदि विधायिका के इरादे को शांताबेन भुवनेश्वर बनाम को अधिकार क्षेत्र प्रदान करना होगा।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस।

एक्ट "। इसलिए, केवल इसलिए कि अब विशेष न्यायालय को भी आगे और अतिरिक्त शक्तियां दी गई हैं अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान और वर्तमान मामले में केवल इसलिए कि मजिस्ट्रेट द्वारा अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया है और उसके बाद मामला विशेष न्यायालय को सौंप दिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि पूरी आपराधिक कार्यवाही दूषित हो गई है और उन्हें रद्द करने और अलग करने की आवश्यकता है। यहां तक कि उपरोक्त पहलू पर भी दूसरे कोण से विचार करने की आवश्यकता है अर्थात अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह का सिद्धांत। अभियुक्त पर मुकदमा चलाया जाए

अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के तहत गठित विशेष न्यायालय/विशेष विशेष न्यायालय द्वारा अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध। यहां तक कि वे अधिकार भी पीड़ित को अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए उपलब्ध हैं, जिसमें मुकदमा धारा 14 के तहत गठित विशेष अदालत/विशेष विशेष अदालत द्वारा किया जाता है।

प्रक्रिया, यदि कोई मजिस्ट्रेट जो धारा 190 की उप धारा (1) के खंड (ए) या खंड (बी) के तहत किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए कानून द्वारा सशक्त नहीं है, संज्ञान लेता है, तो ऐसी अनियमितताएं कार्यवाही को दूषित नहीं करती हैं। अधिक से अधिक, इसे अनियमित कार्यवाही कहा जा सकता है जिसके लिए, यह दूषित नहीं करता है कार्यवाही। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा यह विचार लिया गया है कि वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट ने अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए संज्ञान लिया है और उसके बाद मामला विशेष न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध है और इसलिए, पूरी आपराधिक कार्यवाही दूषित हो जाती है, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और यह अस्थिर है। यदि उपरोक्त आधार पर पूरी आपराधिक कार्यवाही रद्द कर दी जाती है, तो उस मामले में, यह एक आरोपी के लिए एक प्रीमियम होगा, जिसके पास [2021] 10 एस. सी. आर. होने का आरोप है।

अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध किया। यह मानते हुए कि अपनाई गई प्रक्रिया अनियमित है, उस मामले में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित पीड़ित को क्यों पीड़ित किया जाना चाहिए। [पैरा 9.212] [480-सी; 481-बी-जी]

2.1 यह कहना सही नहीं है कि प्राथमिकी दो महीने की अवधि के बाद दर्ज की गई थी और वह भी बिना किसी स्पष्टीकरण के। यहाँ तक कि

अन्यथा, एफ. आई. आर./शिकायत दर्ज करने में देरी के आधार पर, शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत। मुकदमे के दौरान और मुकदमे के दौरान देरी के पहलू पर विचार किया जाना आवश्यक है जब शिकायतकर्ता से शपथ पर पूछताछ की जाती है और देरी पर उससे सवाल किया जाता है और वह अपनी प्रतिपरीक्षा में देरी की बहुत अच्छी तरह से व्याख्या कर सकता है। [पैरा 14] [482-ई-जी]

2.2 अब, जहाँ तक उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी है कि दंड संहिता की धारा 197 के तहत प्रतिबंध को देखते हुए

प्रक्रिया और कोई मंजूरी प्राप्त नहीं होने का संबंध है, उपरोक्त भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शक्तियों के दुरुपयोग के गंभीर आरोपों को देखते हुए, और यह आरोप लगाया जाता है कि समाज में रहने वाले निर्दोष व्यक्तियों को पीटा गया था और यहां तक कि पहले भी

जिस दिन शिकायतकर्ता/पीड़ित द्वारा फोन किया गया था कि समाज में चोर आ गए हैं और शिकायत की गई थी कि बार-बार ऐसी घटनाओं के बावजूद कुछ नहीं किया जा रहा है और वर्तमान मामले में कथित घटना आधी रात को हुई है जब फिर से पुलिस अधिकारी अतिरिक्त पुलिस कर्मचारियों के साथ गांव गए और आरोपी के खिलाफ आरोप दूसरी घटना के संबंध में हैं, यह बहस योग्य है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत शक्ति लागू होगी और जो कार्य आरोपी/पुलिस अधिकारियों द्वारा किए गए हैं, उन्हें आधिकारिक कर्तव्यों का हिस्सा कहा जा सकता है। इसलिए, इस स्तर पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना अस्वीकार्य है। यह मानते हुए भी कि उच्च न्यायालय सही था कि धारा 197 के तहत मंजूरी के अभाव में, कार्यवाही दूषित हो जाती है, उस मामले में, उच्च न्यायालय शांताबेन भुवनेश्वर बनाम को निर्देश दे सकता था।

पूरी आपराधिक कार्यवाही को पूरी तरह से रद्द करने के बजाय मंजूरी लेने और फिर आगे बढ़ने का अधिकार। 2017 के विशेष आपराधिक आवेदन No.5670 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया गया है और अलग कर दिया गया है। अभियुक्त पर उपरोक्त अपराधों के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले विशेष न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाए। [पैरा 15,16] [482-जी-एच; 483-ए-डी, एफ]

एम. पी. राज्य बनाम भुराजी और ओआरएस। (2001) 7 एससीसी 679: [2001] 2 पूरक। एससीआर 128; मोली और एनर। वी. की स्थिति

केरल (2004) 4 एस. सी. सी. 584: [2004] 3 एससीआर 346;

विद्याधरन बनाम। केरल राज्य (2004) 1 एस. सी. सी. 215:

[2003] 5 पूरक। एस. सी. आर. 524 संदर्भित है।

मामला कानून

संदर्भ

[2012] 3 एससीआर 496

उस पर भरोसा करें

पैरा 3.2

[2001] 2 पूरक। एससीआर 128

संदर्भित किया गया है

पैरा 8.2

[2004] 3 एससीआर 346

संदर्भित किया गया है

पैरा 8.2

[2003] 5 पूरक। एससीआर 524

संदर्भित किया गया है

पैरा 8.2

आपराधिक अपील न्यायपालिका "आपराधिक अपील

2021 का No.967।

उच्च न्यायालय के 09.05.2019 दिनांकित निर्णय और आदेश से

2017 के विशेष आपराधिक आवेदन No.5670 में अहमदाबाद में गुजरात सरकार के.

निखिल गोयल, सुश्री नवीन गोयल, विनय मैथ्यू, अधिवक्ता। के लिए

अपीलार्थी।

अनिरुद्ध पी. मयी, अधिवक्ता। उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा दिया गया था एम. आर. शाह, जे.

1.0 . विवादित फैसले से दुखी और असंतुष्ट महसूस करना

और गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.05.2019 का आदेश पारित किया गया।

2017 के विशेष आपराधिक आवेदन No.5670 में, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने उक्त विशेष आपराधिक आवेदन को अनुमति दी है और रद्द कर दिया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 452,323,325,504,506 (2) और 114 के तहत और अनुसूचित जाति [2021] 10 एस. सी. आर. की धारा 3 (1) (x) के तहत दंडनीय अपराधों के लिए 2013 का मामला संख्या 2 होने वाली एफ. आई. आर. को अलग कर दिया।

और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे इसके बाद "अत्याचार अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया गया है) और 2013 की आपराधिक जांच में विद्वान जे. एम. एफ. सी., झालौड द्वारा पारित समन जारी करने के आदेश को भी रद्द कर दिया गया है।

उससे उत्पन्न होने वाली परिणामी कार्यवाही, मूल सूचना देने वाले/शिकायतकर्ता ने वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है।

2.0 . संक्षेप में वर्तमान अपील की ओर ले जाने वाले तथ्य इस प्रकार हैं -

इसके अंतर्गत: 2.1 . कि 06.09.2013 पर, मूल शिकायतकर्ता के पति के खिलाफ 2013 की CR.No.I-104 के रूप में एक प्राथमिकी दर्ज की गई

भारतीय दंड संहिता की धारा 323,353,362,186 और 114 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए इसमें अपीलकर्ता। कि उक्त एफ. आई. आर. प्रत्यर्थी सं. के कहने पर दर्ज/दी गई थी। 1 इसमें-मूल अभियुक्त सं। 1 जो पुलिस उप निरीक्षक के रूप में काम कर रहा था

अन्य बात यह है कि इसमें नामित मूल अभियुक्त व्यक्तियों ने लोक सेवकों को उनके कर्तव्यों के पालन में बाधा डाली और उनके द्वारा इस आड़ में पीटा गया कि वे चोर को पकड़ने में सक्षम नहीं थे और उन्हें घायल कर दिया।

2.2 . यहाँ शिकायतकर्ता के मामले के अनुसार, गाँव में चोरी और लूट की घटनाएं बढ़ रही थीं, जिसके कारण गाँव के लोग

डर गए थे। आई. डी. 1 को रात करीब 8 बजे एक चोर उनकी सोसायटी में रहने वाले प्रवीणभाई के घर आया और उसके बाद पुलिस को बुलाया गया कि पुलिस अधिकारी सोसाइटी में आए और चूंकि समाज के लोग पुलिस से संतुष्ट नहीं थे, इसलिए आरोपी व्यक्ति जो पुलिस अधिकारी हैं, वे उत्तेजित हो गए और उसके बाद, एस. पी. कार्यालय, दाहोद के कर्मचारियों को बुलाया गया और उसके बाद प्रतिवादी नं. 1 – मूल अभियुक्त नं. 1 लिमडी पुलिस स्टेशन वापस चला गया। मामले के अनुसार

शिकायतकर्ता, 06.09.2013 पर 10.30 बजे, जब सोसायटी के निवासी अपने घरों में थे और उस समय शिकायतकर्ता अपने घर के बाहर बैठी थी, तीन पुलिस अधिकारी एक कार में आए और मूल आरोपी संख्या। 1 और 2 समाज में आए और सभी मूल अभियुक्त व्यक्तियों ने दुर्व्यवहार किया शिकायतकर्ता ने अपनी जाति के संबंध में शिकायत की और उसे चोट भी पहुंचाई। जैसा कि प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है, मूल अभियुक्त व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता के घर में तोड़फोड़ की और शिकायतकर्ता के बेटे को भी पीटा और शिकायतकर्ता के पति को ले गए और उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। शिकायतकर्ता के मामले के अनुसार, उसने एक शिकायत दर्ज कराने की कोशिश की

07.09.2013 पर औपचारिक शिकायत, लेकिन वही दर्ज कराने में असमर्थ थी और इसलिए, वह विद्वान शांताबेन भुवनेश्वर बनाम के समक्ष शिकायत दर्ज करने के लिए विवश थी।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अनुसार जांच के लिए यह देखते हुए कि शिकायतकर्ता को सुनने और दस्तावेजी साक्षय का अध्ययन करने और मामले की गंभीरता को देखते हुए, जांच की आवश्यकता है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने जांच अधिकारी को 29.10.2013 के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करने का भी निर्देश दिया और

निर्देश दिया कि इस संबंध में यदी को Dy.Sp, दाहोद को भेजा जाना चाहिए। कि जांच अधिकारी ने 29.05.2014 पर रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया है कि पिटाई के संबंध में प्राथमिकी में आरोप समर्थित नहीं हैं और 27.5.2014 पर दर्ज Dy.Sp के बयान के अनुसार, आरोपी ने

नहीं। 2 कथित अपराध के समय वह लिमडी पुलिस स्टेशन में उसके साथ मौजूद था और पुलिस स्टेशन से बाहर नहीं गया था। रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि गवाहों के बयान सामान्य और अस्पष्ट हैं और जांच के बाद मामले को आगे बढ़ाने के लिए कोई सबूत नहीं है। इसलिए, जांच एजेंसी ने इस आशय की एक संक्षिप्त रिपोर्ट संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर की। 2.3 . संक्षिप्त रिपोर्ट दाखिल करने के बाद, विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी ने 03.10.2015 पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (8) के तहत आगे की जांच के लिए एक आदेश पारित किया।

मूल की भागीदारी के संबंध में संक्षिप्त रिपोर्ट स्पष्ट नहीं है।

अभियुक्त नं. 3 और अन्य पुलिस अधिकारी। इसके बाद, एस. सी./एस. टी. प्रकोष्ठ, दाहोद के पुलिस उपाधीक्षक ने विद्वत मजिस्ट्रेट को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि कथित अपराध प्रथम दृष्टया अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रतीत होते हैं। इसके बाद, पुलिस उपाधीक्षक, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति प्रकोष्ठ, दाहोद द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार करने के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 1 के आदेश के माध्यम से आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी करके कथित अपराधों का संज्ञान लिया था।

2.4 . अभियुक्त को समन करने/प्रक्रिया जारी करने के विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करना।

उपरोक्त अपराधों के लिए अभियुक्त के खिलाफ, अभियुक्त ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष विशेष आपराधिक आवेदन को प्राथमिकता दी और 2013 का मामला संख्या 2 होने के साथ-साथ 2017 के आपराधिक मामले में पारित समन जारी करने के आदेश को रद्द करने और खारिज करने का अनुरोध किया।

2.5 . मुख्य रूप से अभियुक्त की ओर से यह तर्क दिया गया था कि विद्वान मजिस्ट्रेट को अपराधों का संज्ञान लेने का कोई अधिकार नहीं था [2021] 10 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

अत्याचार अधिनियम के प्रावधानों के तहत और केवल विशेष न्यायालय ही अपराधों का संज्ञान ले सकता है। यह प्रस्तुत किया गया था कि विद्वत मजिस्ट्रेट का न्यायालय अत्याचार अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक विशेष न्यायालय नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया गया कि विवादित एफ. आई. आर. शिकायतकर्ता के पति और अन्य लोगों के खिलाफ 06.09.2013 पर हुई घटना के लिए दर्ज की गई शिकायत के जवाब में है, जिसमें पुलिस पर हमला किया गया था। अभियुक्त की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया था कि 06.09.2013 पर किए गए कथित अपराधों के लिए 15.11.2013 पर प्राथमिकी/शिकायत दर्ज करने में भारी देरी हुई थी और देरी की व्याख्या नहीं की गई है। यह आगे प्रस्तुत

किया गया कि प्रासंगिक समय पर पुलिस अधिकारी अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे और इसलिए, किसी भी कार्यवाही की शुरुआत से पहले, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी की आवश्यकता थी और सक्षम प्राधिकारी से ऐसी मंजूरी के अभाव में, कोई अभियोजन शुरू नहीं किया जा सकता था।

/ उनके खिलाफ जारी रखा।

2.6 . एफ. आई. आर. को रद्द करने की प्रार्थना और उपरोक्त आधार पर समन जारी करने के आदेश का विद्वान वकील ने विरोध किया।

मूल शिकायतकर्ता। अत्याचार अधिनियम की धारा 14 का उल्लेख करते हुए, यह

यह प्रस्तुत किया गया था कि विशेष न्यायालय के पास "केवल मुकदमे के लिए" शक्ति है और विशेष न्यायालय सीधे संज्ञान नहीं ले सकता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया कि सारांश रिपोर्ट दाखिल करने के बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आगे की जांच का निर्देश दिया, जिसके बाद, Dy.Sp ने जांच के बाद सारांश रिपोर्ट प्रस्तुत की कि अपराध बनाया गया है।

2.7 . जवाब में, अभियुक्त की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि

अत्याचार अधिनियम की संशोधित धारा 14 को देखते हुए, विशेष न्यायालय अपराध का सीधा संज्ञान ले सकता है और इसलिए, अब विद्वान मजिस्ट्रेट को सीधे संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है। 2.8 . विवादित निर्णय और आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने विशेष आपराधिक आवेदन को अनुमति दी है और प्राथमिकी को रद्द कर दिया है और खारिज कर दिया है

साथ ही भारतीय दंड संहिता के अपराधों के साथ-साथ अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए संज्ञान लेते हुए और समन जारी करते हुए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश मुख्य रूप से इस आधार पर कि अत्याचार अधिनियम की धारा 14 में संशोधन, विशेष न्यायालय सीधे संज्ञान ले सकता है और विद्वान मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र को अपदस्थ कहा जा सकता है और प्राथमिकी में आरोप को देखते हुए, राज्य सरकार से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी के अभाव में, संबंधित न्यायालय को अपराधों का संज्ञान नहीं लेना चाहिए था।

शांताबेन भुवनेश्वर बनाम। आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

2.9 . गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किए गए और स्थापित किए गए विवादित फैसले और आदेश से दुखी और असंतुष्ट महसूस करना। सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही/एफ. आई. आर. और भारतीय दंड संहिता के साथ-साथ अत्याचार अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपराधों के लिए संज्ञान लेते हुए और समन जारी करते हुए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को दरकिनार करते हुए, मूल शिकायतकर्ता ने वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है।

3.0 . अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री निखिल गोयल ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि उच्च न्यायालय ने गलत व्याख्या की है और अत्याचार अधिनियम की धारा 14 में संशोधन का गलत अर्थ निकाला। यह प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च न्यायालय के अनुसार, अत्याचार अधिनियम की धारा 14 में संशोधन के बाद, केवल विद्वान विशेष न्यायाधीश/न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जा सकता है और इसलिए, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने और समन जारी करने को कानून द्वारा निषिद्ध कहा जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप उपरोक्त आधार पर आपराधिक कार्यवाही/प्राथमिकी को रद्द करना गलत है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इस तथ्य के अलावा कि

प्रक्रिया लेकिन केवल इस स्थिति को स्पष्ट करें कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 का प्रतिबंध वास्तव में लागू नहीं होगा। यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह जांच एजेंसी को मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट दायर करने का विकल्प देता है जो आपराधिक संहिता की धारा 209 के तहत मामले को विशेष न्यायाधीश के न्यायालय को सौंपेगा। प्रक्रिया या इसे सीधे विशेष न्यायालय के समक्ष दायर करना। यह प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या एक अभियुक्त की कथित आपराधिक कार्रवाइयों को बढ़ावा देगी, जिस पर गंभीर अपराधों के लिए मुकदमा भी नहीं चलाया जाएगा क्योंकि अंतिम रिपोर्ट को गलत मंच पर भेज दिया गया है।

3.1 . यह प्रस्तुत किया जाता है कि पुरानी संहिता के विपरीत, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 209 जांच की कोई शक्ति नहीं देती है।

मजिस्ट्रेट और मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है कि वे सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य पाए जाने के बाद सत्र न्यायालय को मुकदमे के लिए एक मामला सौंपने के लिए बाध्य हैं।

3.2 यह प्रस्तुत किया जाता है कि इस प्रकार और ऐसा प्रतीत होता है कि असंशोधित धारा [2021] 10 एस. सी. आर. को दी गई व्याख्या को देखते हुए संशोधन की आवश्यकता थी।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

14 रतिराम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णय में (2012) 4 एस. सी. सी. 516 में रिपोर्ट की गई। 3.3 . यह प्रस्तुत किया जाता है कि अन्यथा भी गलत न्यायालय को अंतिम रिपोर्ट भेजने की अनियमितता को केवल एक अनियमितता कहा जा सकता है।

जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 460 (ई) पर विचार करने वाली कार्यवाही को दूषित नहीं करता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 460 (ई) के पीछे तर्क यह है कि हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र में एक आरोपी का प्रवेश केवल संज्ञान लेने के बाद होता है और उसके आपत्ति के पहले अधिकार पर केवल आरोप तैयार करने के चरण में विचार किया जाता है (जमानत और तलाशी और जब्ती के प्रावधानों के अधीन)। यह प्रस्तुत किया जाता है कि अभियुक्त उस मंच से प्रभावित नहीं होता है जो संज्ञान लेता है

और उसे समन जारी करता है जब तक कि उसे सही मंच के सामने अपने अधिकारों का आंदोलन करने का मौका मिलता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय और आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 460 (ई) की अनदेखी करता है।

3.4 . यह प्रस्तुत किया जाता है कि संज्ञान से संबंधित कानून

संशोधन जो मूल अधिकार की प्रकृति का है, केवल तभी संभावित होगा जब तक कि स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी नहीं कहा गया हो। यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि अत्याचार अधिनियम की धारा 14 की व्याख्या करने के लिए एक अभियुक्त को मूल अधिकार, तब अपराध की तारीख प्रासंगिक हो जाती है। हालाँकि, यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि अत्याचार अधिनियम की धारा 14 को केवल प्रक्रियात्मक माना जाता है जो किसी अभियुक्त के अधिकार को प्रभावित नहीं करती है, तो विवादित निर्णय वास्तव में गलत है क्योंकि इसने अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के उल्लंघन के आधार पर शुरुआत में पूरी कार्यवाही को बाधित कर दिया है।

3.5 . यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि यहां तक कि उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष कि प्राथमिकी दर्ज करने में दो महीने की देरी हुई थी

अभिलेख पर सामग्री के विपरीत। यह प्रस्तुत किया जाता है कि कथित अपराध 06.09.2013 पर किया गया है और वास्तव में पहले अगले दिन 07.09.2013 पर प्राथमिकी दर्ज करने का प्रयास किया गया था, लेकिन प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई क्योंकि आरोपी पुलिस अधिकारी थे और उसके बाद, शिकायतकर्ता को विद्वान के समक्ष शिकायत दर्ज करने के लिए मजबूर किया गया था।

मजिस्ट्रेट जो 13.09.2013 पर दायर किया गया था और विद्वान मजिस्ट्रेट के 26.09.2013 दिनांकित आदेश के बाद ही एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए, प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई थी और इसलिए, देरी पर निष्कर्ष गलत और बिना योग्यता के है।

शांताबेन भुवनेश्वर बनाम। आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

3.6 . यह शिकायतकर्ता के विद्वान वकील श्री निखिल गोयल द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि आपराधिक संहिता की धारा 197 के तहत भी प्रतिबंध है।

प्रक्रिया उन कार्यों पर लागू नहीं होगी जो किए गए कार्यों का हिस्सा नहीं हैं आधिकारिक कर्तव्य। यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह सत्ता के पेटेंट दुरुपयोग का मामला है।

यह प्रस्तुत किया जाता है कि मंजूरी का मुद्दा भी पूर्वाग्रह और न्याय की विफलता की परीक्षा के अधीन है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह मानते हुए भी कि धारा 197 के प्रावधान लागू होते हैं, उच्च न्यायालय को अधिकारियों को मंजूरी लेने और फिर पूरी तरह से आगे बढ़ने के बजाय आगे बढ़ने का निर्देश देना चाहिए था।

तरीके से। 4.0 . राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री अनिरुद्ध पी. मयी ने अपीलार्थी का समर्थन किया है।

5.0 . सेवा देने के बावजूद, कोई भी निजी पक्ष की ओर से उपस्थित नहीं हुआ

उत्तरदाता।

6.0 . अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वकील को सुना।

भारतीय दंड संहिता की धारा 452,323,325,504,506 (2) और 114 के तहत और अत्याचार अधिनियम की धारा 3 (1) (x) के तहत इस आधार पर कि (1) वर्तमान मामले में आरोप पत्र का संज्ञान लिया गया है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा और उसके बाद मामला सत्र/विशेष न्यायालय के विद्वान न्यायालय को सौंपा गया था और इसलिए, अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के दूसरे प्रावधान को देखते हुए, संज्ञान नहीं लिया जा सका

विद्वत मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया; (2) कि शिकायत दर्ज करने में देरी हुई थी जिसके लिए ऐसी शिकायत में देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है; (3) अभियोजन शुरू करने से पहले, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी सक्षम प्राधिकारी से प्राप्त नहीं की गई है। 8.0 . इसलिए, इस न्यायालय के विचार के लिए प्रस्तुत मुद्दा/प्रश्न यह है कि क्या ऐसे मामले में जहां विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया जाता है और उसके बाद मामला विद्वान विशेष न्यायालय को सौंपा जाता है, क्या अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के दूसरे परंतुक को ध्यान में रखते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को दूषित कहा जा सकता है, जिसे 2016 के अधिनियम 1 द्वारा अंत:स्थापित किया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

8.1 . उपरोक्त मुद्दे/प्रश्न पर विचार करते समय, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रासंगिक प्रावधानों का विधायी इतिहास जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, विशेष रूप से, संशोधन से पहले और संशोधन के बाद की धारा 14 पर विचार करने की आवश्यकता है। धारा 14 जैसा कि संशोधन से पहले और संशोधन के बाद था, निम्नानुसार है:

" धारा 14. विशेष न्यायालय (पूर्व संशोधन): त्वरित सुनवाई का प्रावधान करने के उद्देश्य से, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रत्येक जिले के लिए अपराधों की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायालय के रूप में एक सत्र न्यायालय निर्दिष्ट करेगी।

इस अधिनियम के तहत "
" धारा 14. विशेष न्यायालय और विशेष विशेष न्यायालय (संशोधन के बाद): (1) शीघ्रता प्रदान करने के उद्देश्य से

विचारण, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक के लिए एक विशेष विशेष न्यायालय की स्थापना करेगी।

जिले:

बशर्ते कि जिन जिलों में इस अधिनियम के तहत कम मामले दर्ज किए जाते हैं, वहां राज्य सरकार उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से -

आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना, ऐसे जिलों के लिए निर्दिष्ट, सत्र न्यायालय इस अधिनियम के तहत अपराधों की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायालय होगा; बशर्ते कि इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालयों को इस अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति होगी।

8.2 . इस न्यायालय के पास रतिराम और अन्य (सुप्रा) के मामले में धारा 14 के पूर्व संशोधन पर विचार करने का अवसर था। इस न्यायालय के समक्ष मामले में, जो संशोधन से पहले था, विद्वान सत्र न्यायालय ने सीधे संज्ञान लिया। इस न्यायालय ने धारा 193 पर विचार किया

दंड प्रक्रिया संहिता और इन प्रश्नों को तैयार किया कि क्या अत्याचार अधिनियम के तहत गठित विशेष न्यायालय सत्र न्यायालय है और क्या अधिनियम में कोई संवैधानिक प्रावधान है जो उक्त न्यायालय को संज्ञान लेने में सक्षम बनाता है। इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 पर ध्यान देने के बाद कहा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि कोई भी सत्र न्यायालय शांताबेन भुवनेश्वर बनाम के न्यायालय के रूप में किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता है।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

संहिता द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए क्षेत्राधिकार को छोड़कर

या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा। इस स्तर पर, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि धारा 14 में पूर्व-संशोधन के लिए विद्वान न्यायालय/विशेष न्यायालय को अनुमति देने/अधिकृत करने का कोई प्रावधान नहीं था।

अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान। इसलिए, इस न्यायालय ने उपरोक्त प्रश्नों को तैयार किया। इस स्तर पर, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जिन मामलों में अत्याचार अधिनियम की धारा 3 (1) (x) के तहत आरोप पत्र दायर किया जाता है और अधिनियम के तहत विशेष न्यायाधीश द्वारा सीधे

संज्ञान लिया जाता है, वहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के संदर्भ में किसी आरोपी को दोषी नहीं ठहराने के प्रभाव और प्रभाव के संबंध में अलग-अलग और विरोधाभासी विचारों को देखते हुए, दो-न्यायाधीशों की पीठ ने मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित करना उचित समझा और उक्त संदर्भ के आधार पर, मामले को तीन माननीय न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखा गया। इस मामले को बड़ी पीठ को संदर्भित करते समय तीन परस्पर विरोधी निर्णय लिए गए-एक एम. पी. बनाम भूराजी और अन्य के मामले में। मोली और एनर के मामले में (2001) 7 एस. सी. सी. 679 में रिपोर्ट की गई। बनाम केरल राज्य (2004) 4 एस. सी. सी. 584 में और विद्याधरन बनाम केरल राज्य (2004) 1 एस. सी. सी. 215 में रिपोर्ट किए गए थे

नोट किया। भुराजी (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 465 (1) की सहायता लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया गया है और साक्षय के उचित मूल्यांकन पर दोषसिद्धि दर्ज की गई है, तो उसे मिटाया या मिटाया नहीं जा सकता है।

केवल इस आधार पर कि कोई प्रतिबद्ध कार्यवाही नहीं हुई थी और विशेष न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था, क्योंकि यह न्याय की विफलता को जन्म नहीं देता है। दूसरी ओर, मोली (उपरोक्त) के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विशेष न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है यदि उसने स्वतः संज्ञान लिया है और शिकायत का संज्ञान लिया है

सीधे तौर पर मामले को प्रतिबद्ध किए बिना और इसलिए, जैसा भी मामला हो, दोषसिद्धि को फिर से या पूरी तरह से अलग कर दिया जाना चाहिए।

समर्पण के उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार करने के बाद और धारा 207 (पूर्व-संशोधन), 207-ए (पूर्व-संशोधन) पर विचार करने के बाद

और पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 209 में, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित और अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के तहत सत्र न्यायालय को मामला सौंपते समय, ऐसे मामले में जहां अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य है, मजिस्ट्रेट को प्रदत्त सीमित अधिकार क्षेत्र केवल अपराध की प्रकृति को सत्यापित करने के लिए है और उसके बाद यदि विद्वान मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा परीक्षण योग्य हैं, तो वह मामले को सत्र न्यायालय को सौंपेगा। ऐसा मानते हुए, इस न्यायालय ने [2021] 10 एस. सी. आर. पर विचार किया।

पुरानी संहिता-दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत प्रासंगिक प्रावधान और यह ध्यान देने के बाद कि पुरानी संहिता और मौजूदा संहिता के तहत सत्र न्यायालय के प्रति प्रतिबद्धता के लिए कार्यवाही में बहुत अंतर है, यह देखा गया है कि संहिता की धारा 209 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह सुझाव दे कि पुरानी संहिता के तहत प्रदान किए गए किसी भी संरक्षण को मौजूदा से दूर कर दिया गया है। पैरा 53 में

58 तक, यह निम्नानुसार मनाया और आयोजित किया जाता है:

" 53. उपरोक्त उद्धृत प्रावधानों के केवल अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि इससे पहले एक विस्तृत प्रक्रिया की गणना की गई थी -

सत्र न्यायालय को मामले की प्रतिबद्धता। जैसा कि अजेय है, इससे पहले यदि कोई मामला पुलिस रिपोर्ट पर दर्ज किया जाता था, तो मजिस्ट्रेट को जांच करने, विभिन्न पहलुओं के बारे में संतुष्टि दर्ज करने, वास्तविक आयोग के संबंध में साक्षय लेने की आवश्यकता होती थी।

अपराध का आरोप लगाया गया था और आगे दर्ज करने का विवेकाधिकार निहित था

एक या अधिक गवाहों का साक्षय। उपरोक्त के अलावा, अभियुक्त गवाहों से जिरह करने के लिए स्वतंत्र था और मजिस्ट्रेट पर दस्तावेजों पर विचार करने का दायित्व था और, यदि आवश्यक है, अभियुक्त की जाँच करें ताकि वह अभियोजन पक्ष द्वारा उसके खिलाफ साक्षय में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझा सके और अभियुक्त को सुनवाई का अवसर प्रदान कर सके और यदि अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं था

मुकदमे के लिए, कारणों को दर्ज करें और उसे आरोपमुक्त करें।

54. इस प्रकार, अभियुक्त को मामले की प्रतिबद्धता से पहले पर्याप्त अधिकार प्राप्त था। यह वास्तव में एक महत्वपूर्ण चरण था। लेकिन, प्रेजेंटी में प्रतिबद्ध कार्यवाही में, मजिस्ट्रेट को केवल यह देखने की आवश्यकता होती है कि क्या अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य है। विद्वान वरिष्ठ वकील श्री फखरुद्दीन ने कहा कि "यह मजिस्ट्रेट को दिखाई देता है" शब्दों का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है और मजिस्ट्रेट के पास मामले के बारे में राय बनाने और पुलिस रिपोर्ट को स्वीकार नहीं करने का विवेकाधिकार है।

55. उक्त निवेदन की सराहना करने के लिए, 1973 की संहिता की धारा 207 का उल्लेख करना उचित है जो प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित है।

अभियुक्त को कुछ दस्तावेजों को नि:शुल्क देना। धारा 209 (ए) स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि दस्तावेजों का प्रावधान इस प्रकार है -

धारा 207 या धारा 208 के अनुसार एकमात्र शर्त है

प्रतिबद्धता के लिए पूर्ववर्ती। यह उल्लेखनीय है कि इन शब्दों के बाद, शांताबेन भुवनेश्वर बनाम।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

अर्थात्, "यह मजिस्ट्रेट को दिखाई देता है", इसके बाद आने वाले शब्द हैं "कि अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य है"। मजिस्ट्रेट को प्रदत्त सीमित अधिकार क्षेत्र केवल अपराध की प्रकृति को सत्यापित करने के लिए है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इसके बाद, एक जनादेश दिया जाता है कि वह "प्रतिबद्ध होगा"।

56.स्पष्ट रूप से, पुरानी संहिता और मौजूदा संहिता के तहत सत्र न्यायालय के प्रति प्रतिबद्धता के लिए कार्यवाही में बहुत अंतर है। खंड में कुछ भी नहीं है

209 संहिता का दूरस्थ रूप से यह सुझाव देने के लिए कि पुरानी संहिता के तहत प्रदान की गई किसी भी सुरक्षा को

मौजूदा एक के लिए दूरबीन

57. यह ध्यान देने योग्य है कि दंड संहिता के तहत

प्रक्रिया, 1898, एक पूर्ण-स्तरीय मजिस्ट्रेट जांच को प्रतिबद्ध कार्यवाही में अभिनिर्धारित किया गया था और तब अभियोजन पक्ष को इस स्तर पर ही सभी गवाहों से पूछताछ करने की आवश्यकता थी। 1955 में संसद ने 1955 के अधिनियम 26 द्वारा उक्त प्रक्रिया में कटौती की और पुरानी संहिता में धारा 207ए लाई। बाद में, भारत के विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में इस प्रकार की सिफारिश की:

18.19 . एक सावधानीपूर्वक विचार के बाद हम हैं

सर्वसम्मत राय है कि प्रतिबद्ध कार्यवाही काफी हद तक समय और प्रयास की बर्बादी है और सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमे की दक्षता में सराहनीय योगदान नहीं देती है। हालांकि वे स्पष्ट रूप से समय लेने वाले हैं, वे किसी भी आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते हैं। प्रत्येक मुकदमे की वांछनीयता के बारे में कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है, और विशेष रूप से एक गंभीर अपराध के लिए मुकदमे के बारे में, जो जल्द से जल्द शुरू हो सकता है।

जाँच पूरा होने के बाद व्यवहार्य। प्रतिबद्ध कार्यवाहियाँ जो केवल इस कदम में देरी करती हैं, न्याय के उद्देश्य को आगे नहीं बढ़ाती हैं। निर्दोष अभियुक्त को सत्र विचारण की अग्निपरीक्षा से बचाने का प्राथमिक उद्देश्य व्यवहार में हासिल नहीं किया गया है और अभियुक्त को मुकदमे में मिलने वाले मामले के पर्याप्त विस्तार से अवगत कराने का दूसरा मुख्य उद्देश्य अन्य तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है। मजिस्ट्रेट के समक्ष आंशिक और अप्रभावी परीक्षण अभ्यास। हम अनुशंसा करते हैं कि प्रतिबद्ध कार्यवाही होनी चाहिए

निरस्त कर दिया गया।

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

हमने मौजूदा संहिता में हुए परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए उसी को पुनः प्रस्तुत किया है। यह सच है कि प्रतिबद्ध कार्यवाही को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया गया है, लेकिन वर्तमान अवतार में, यह वास्तव में रूपांतरित हो गया है और मजिस्ट्रेट की भूमिका पूरी तरह से संकुचित हो गई है।

58. हमारी सुविचारित राय में, नई संहिता के तहत प्रतिबद्धता के स्तर पर मजिस्ट्रेट को सौंपी गई प्रतिबंधित भूमिका के कारण, इसका पालन न करना और दोषसिद्धि के बाद उस संबंध में कोई आपत्ति उठाना आकर्षित करता है -

'न्याय की विफलता' के सिद्धांत की प्रयोज्यता और दोषी-अपीलार्थी कानूनी रूप से अपीलीय न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए बाध्य हो जाता है कि वह पक्षपातपूर्ण रहा है और निष्पक्ष मुकदमे से वंचित रहा है या न्याय की विफलता हुई है। निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा और न्याय के गर्भपात की अवधारणा अमूर्तता के दायरे में नहीं हैं। वे निर्वात में काम नहीं करते हैं। उन्हें तथ्यों के आधार पर ठोस रूप से स्थापित किया जाना चाहिए और अधिनियम के तहत संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 193 के तहत प्रक्रियात्मक चूक या प्रतिबद्धता जैसे हस्तक्षेप से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए। यह प्रतिबिंबित और दृश्य वास्तविकता की अभिव्यक्ति होनी चाहिए, लेकिन एक नियमित बात नहीं होनी चाहिए, जिसकी जड़ें बिना किसी वास्तविकता के दिखने में हैं। उपरोक्त पूर्वनिर्धारित कारणों पर परीक्षण किया गया, यह लगभग है

न्याय की विफलता या पूर्वाग्रह के कारण या न्याय की विफलता की कल्पना करना असंभव है

अनुपालन। यह मानना पूरी तरह से अनुचित और अनुचित होगा कि इस तरह का गैर-अनुपालन मुकदमे को दूषित करता है।

कि इसके बाद, उपरोक्त अवलोकन के बाद, इस न्यायालय ने संहिता की धारा 193 के गैर-अनुपालन से संबंधित आपत्ति को खारिज कर दिया,

जिसके परिणामस्वरूप अंततः अनुसूचित जातियों के तहत विशेष न्यायाधीश द्वारा सीधे मनोरंजन और संज्ञान लिया गया है और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 और

कि यह मुकदमे को दूषित नहीं करता है और केवल उक्त आधार पर, दोषसिद्धि को दरकिनार नहीं किया जा सकता है या फिर से मुकदमे का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। कि इसके बाद, इस न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि मोली (ऊपर) में दिया गया निर्णय और

विद्याधरन (ऊपर) ने भूलाजी (ऊपर) में निर्णय का उल्लेख नहीं किया है, जो एक बाध्यकारी मिसाल है, और इसलिए वे इनक्यूरियम के अनुसार हैं। इस स्तर पर, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि उक्त निर्णय में इस न्यायालय ने पीड़ित के अधिकार की तुलना में त्वरित सुनवाई की अवधारणा पर भी विस्तार से विचार किया है और

पैराग्राफ 59,63,64 और 65 में निम्नानुसार देखा गया है:

शांताबेन भुवनेश्वर बनाम। आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

" 59. इस मोड़ पर, हम दो अन्य अवधारणाओं का उल्लेख करना चाहेंगे, अर्थात् त्वरित सुनवाई और संवैधानिक प्रतिमान और सिद्धांत पर आधारित आपराधिक न्यायशास्त्र में पीड़ित के साथ व्यवहार। त्वरित सुनवाई के लिए अभियुक्त के अधिकार पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार जोर दिया गया है। इसे संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में एक अंतर्निहित और अंतर्निहित पहलू के रूप में मान्यता दी गई है। त्वरित मुकदमे के पूरे उद्देश्य का उद्देश्य उत्पीड़न से बचना और देरी को रोकना है। यह एक न्याय वितरण प्रणाली से संबंधित सभी लोगों का यह देखने का पवित्र दायित्व है कि आपराधिक प्रशासन

न्याय प्रभावी, जीवंत और सार्थक हो जाता है। त्वरित सुनवाई की अवधारणा को केवल एक धारणा ही नहीं रहने दिया जा सकता है।

औपचारिकता (हुसैनारा खातून और ओआरएस देखें। वी. गृह सचिव, बिहार राज्य 28, मोती लाल सराफ बनाम। जम्मू और कश्मीर राज्य 29 और राज देव शर्मा बनाम। बिहार राज्य 30)।

63. वर्तमान मामले में, जैसा कि माना जा सकता है, आरोप तय करते समय या किसी अन्य प्रासंगिक समय पर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी, लेकिन दोषसिद्धि के बाद ही पेश की गई थी। इनके तहत

परिस्थितियों में, सामूहिक अधिकार के साथ-साथ पीड़ित का अधिकार सबसे आगे आता है और फिर यह बन जाता है

अभियुक्त की ओर से न्यायालय को संतुष्ट करना अनिवार्य है कि उसके लिए न्याय की विफलता या पूर्वाग्रह पैदा किया गया है। जब तक यह स्थापित नहीं हो जाता है, दोषसिद्धि को एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में अलग करना या फिर से मुकदमे के लिए निर्देश को केवल उक्त आधार पर पाठ्यक्रम के तीसरे चरण के रूप में अलग करना न्याय के लिए एक अभिशाप होगा।

64. यह ध्यान दिया जाए कि कोई भी पीड़ित के साथ विदेशी या आपराधिक मुकदमे के लिए पूरी तरह से अजनबी के रूप में व्यवहार नहीं कर सकता है। समय बीतने के साथ आपराधिक न्यायशास्त्र ने पीड़ित विज्ञान पर जोर दिया है जो मूल रूप से अपराधी के साथ-साथ पीड़ित के दृष्टिकोण से मुकदमे की धारणा है। दोनों

सामाजिक संदर्भ में देखा जाता है। कुछ देशों में पीड़ित के दृष्टिकोण को उचित सम्मान और सम्मान दिया जाता है। हमारे मौजूदा आपराधिक न्यायशास्त्र में कुछ अपराधों के संबंध में, पीड़ित की गवाही को सर्वोच्च महत्व दिया जाता है। कभी-कभी यह माना जाता है कि यह देखना अदालत का कर्तव्य है कि पीड़ित के अधिकार की रक्षा की जाए। पुनः विचारण के लिए एक निर्देश घड़ी को पीछे रखना है और यह [2021] 10 एस. सी. आर. के लिए न्याय का उपहास होगा।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

यदि मुकदमा वास्तव में अनुचित नहीं रहा है और वहाँ है

न्याय की कोई विफलता या न्याय की विफलता नहीं थी।

65. हम बिना किसी विरोधाभास के डर के कह सकते हैं कि यदि न्याय की विफलता को वर्तमान प्रकृति के मामले में उचित महत्व नहीं दिया जाता है, तो प्रत्येक प्रक्रियात्मक चूक या हस्तक्षेप को मंच पर एक विशेषाधिकार प्राप्त स्थान दिया जाएगा। यह, अनावश्यक व्याख्यात्मक गतिशीलता के साथ, आपराधिक न्याय वितरण प्रणाली में सेंध लगाने की प्रभाव क्षमता रखता है और अंततः, न्याय एक तरह का भ्रम बन जाता है।

मिराज। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि विधानमंडल ने जानबूझकर कुछ अधिकारों को समाप्त कर दिया नई संहिता के तहत प्रतिबद्ध स्तर पर अभियुक्त। विधानमंडल का स्पष्टतम अर्थ में इरादा यह है कि प्रत्येक

चरण को महत्वपूर्ण नहीं माना जाना चाहिए और इसकी व्याख्या आपराधिक मुकदमे के मूल उद्देश्यों को कम करने के लिए की जानी चाहिए।"

इस न्यायालय ने आधिकारिक रूप से निष्कर्ष निकाला कि मुकदमे के समापन में देरी समाज के सामूहिक आक्रोश और एक आरोपी (जो पीड़ित है) की पीड़ा और पीड़ा के साथ सीधा संबंध है। ऐसा प्रतीत होता है कि रतिराम और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां।

अत्याचार अधिनियम, 1989 के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेना। इसलिए, धारा 14 को शामिल करने का उद्देश्य और उद्देश्य अत्याचार अधिनियम, 1989 के तहत अपराधों के लिए त्वरित सुनवाई प्रदान करना है और जैसा कि ऊपर देखा गया है, ताकि विद्वत मजिस्ट्रेट द्वारा विद्वत विशेष न्यायालय/सत्र न्यायालय में अपराध करने से होने वाली देरी से बचा जा सके। 9. उपरोक्त विधायी इतिहास को ध्यान में रखते हुए, जिसके द्वारा अत्याचार अधिनियम की धारा 14 में परंतुक को सम्मिलित किया गया था, जिसके द्वारा विशेष न्यायालय ने भी शांताबेन भुवनेश्वर बनाम को प्रदान करने के उद्देश्य से इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट किया था।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

त्वरित सुनवाई के लिए अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति अत्याचार अधिनियम, 1989 के तहत, यह मुद्दा/प्रश्न उठाया गया कि क्या ऐसे मामले में जहां अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए, संज्ञान है

विद्वत मजिस्ट्रेट द्वारा लिया जाता है और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय/विशेष न्यायालय को सौंपा जाता है और विद्वत विशेष न्यायालय/सत्र न्यायालय द्वारा तुरंत संज्ञान नहीं लिया जाता है, क्या अत्याचार अधिनियम, 1989 के तहत अपराधों के लिए पूरी आपराधिक कार्यवाही को दूषित कहा जा सकता है, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा विवादित निर्णय और आदेश में कहा गया है?

9.1 . [2021] 10 एस. सी. आर. संहिता की धारा 207,209 और 193 के निष्पक्ष पठन पर।

आपराधिक प्रक्रिया और 2016 डब्ल्यू. ई. एफ. <आई. डी. 1 के अधिनियम संख्या 1 द्वारा अत्याचार अधिनियम की धारा 14 में परंतुक को सम्मिलित करना, हमारी राय है कि उपरोक्त आधार पर पूरी आपराधिक कार्यवाही को दूषित नहीं कहा जा सकता है। अत्याचार अधिनियम की धारा 14 का दूसरा परंतुक, जिसे 2016 के अधिनियम 1 द्वारा अंत:स्थापित किया गया है, डब्ल्यू. ई. एफ. त्वरित सुनवाई के लिए प्रावधान करने के उद्देश्य से इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट विशेष न्यायालय को शक्ति प्रदान करता है, के पास भी अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति होगी। इसे ध्यान में रखते हुए

धारा 14 में परन्तुक डालने का उद्देश्य और उद्देश्य, यह नहीं कहा जा सकता है

अत्याचार अधिनियम की धारा 14 का प्रावधान और उस उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार करना, जिसके लिए अत्याचार अधिनियम की धारा 14 का प्रावधान है। त्वरित सुनवाई का प्रावधान करने के उद्देश्य से और ऊपर बताए गए उद्देश्य और उद्देश्य के लिए, यह सलाह दी जाती है कि धारा 14 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस तरह से स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालय, त्वरित सुनवाई का प्रावधान करने के उद्देश्य से सीधे अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान ले। लेकिन साथ ही, जैसा कि ऊपर देखा गया है, केवल इस आधार पर कि अपराधों का संज्ञान

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

9.2 . उपरोक्त निष्कर्ष के समर्थन में, धारा 14 के दूसरे परंतुक में उपयोग किए गए शब्दों पर बारीकी से विचार किया जाना आवश्यक है। शब्द हैं। "इस प्रकार स्थापित या निर्दिष्ट न्यायालय को इस

न्यायालय के तहत अपराधों का सीधे संज्ञान लेने की शक्ति होगी"। "केवल" शब्द स्पष्ट रूप से गायब है। यदि विधायिका की मंशा अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों का संज्ञान विशेष रूप से विशेष न्यायालय को देने की है, तो उस मामले में,

विद्वत विशेष न्यायालय के प्रति प्रतिबद्ध होने पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि पूरी आपराधिक कार्यवाही को दूषित कर दिया गया है और उन्हें रद्द करने और अलग करने की आवश्यकता है। 10. यहां तक कि उपरोक्त पहलू पर भी दूसरे कोण से विचार करने की आवश्यकता है अर्थात अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह का सिद्धांत। रतिराम और अन्य (उपर्युक्त) के मामले में, जिसमें इस न्यायालय को अत्याचार अधिनियम (पूर्व संशोधन) की धारा 14 पर विचार करने का अवसर मिला था, विशेष रूप से यह मत व्यक्त किया है और अभिनिर्धारित किया है कि (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत प्रतिबद्ध कार्यवाही में, मजिस्ट्रेट को केवल यह देखने की आवश्यकता है कि

क्या अपराध सत्र न्यायालय द्वारा अनन्य विचारण योग्य है; (2) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के तहत मजिस्ट्रेट को प्रदत्त सीमित अधिकार क्षेत्र केवल अपराधों की प्रकृति को सत्यापित करने के लिए है; (3) अपराधों की प्रकृति को सत्यापित करने के बाद कि अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय हैं, वह मामले को सत्र न्यायालय को सौंप देगा; (4) नई संहिता, शांताबेन भुवनेश्वर बनाम के तहत अपराध के चरण में मजिस्ट्रेट को सौंपी गई सीमित भूमिका के कारण।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

उसी का पालन न करना और दोषसिद्धि के बाद उस संबंध में आपत्ति उठाना "न्याय की विफलता" के सिद्धांतों की प्रयोज्यता को आकर्षित करता है और दोषी कानूनी रूप से अपीलीय न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए बाध्य हो जाता है कि वह पक्षपातपूर्ण रहा है और निष्पक्ष मुकदमे से वंचित रहा है या न्याय की विफलता हुई है; (5) यह अभिनिर्धारित करना पूरी तरह से अनुचित और अनुचित होगा कि ऐसा गैर-अनुपालन मुकदमे को दूषित करता है।

11. वर्तमान अपील में शामिल मुद्दा भी होना आवश्यक है

दूसरे कोण से विचार करें। अभियुक्त पर अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए विशेष अदालत/विशेष विशेष अदालत द्वारा मुकदमा चलाया जाना है। अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के तहत गठित। यहां तक कि वे अधिकार भी पीड़ित को अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के लिए उपलब्ध हैं जिसमें मुकदमा अत्याचार अधिनियम की धारा 14 के तहत गठित विशेष अदालत/विशेष विशेष अदालत द्वारा किया जाता है। इसलिए, जब तक और जब तक अत्याचार अधिनियम की धारा 14 से आने वाले अधिकार प्रभावित नहीं होते हैं, तब तक आरोपी कोई शिकायत नहीं कर सकता है और यह नहीं कहा जा सकता है कि अत्याचारों के तहत अपराधों के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेना।

अधिनियम और उसके बाद विशेष न्यायालय को मामला सौंपने के लिए, वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। 12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 460 पर विचार करते हुए भी, यदि कोई मजिस्ट्रेट कानून द्वारा अधिकार प्राप्त नहीं है

धारा 190 की उप-धारा (1) के खंड (ए) या खंड (बी) के तहत किसी अपराध का संज्ञान, संज्ञान लेता है, ऐसी अनियमितताएं कार्यवाही को दूषित नहीं करती हैं। अधिक से अधिक, इसे अनियमित कार्यवाही कहा जा सकता है, जिसके लिए यह कार्यवाही को दूषित नहीं करता है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा यह विचार लिया गया है कि वर्तमान मामले में विद्वान मजिस्ट्रेट ने इसके लिए संज्ञान लिया है - अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध और उसके बाद मामला विद्वान विशेष न्यायालय को सौंपा जाता है और इसलिए, पूरी आपराधिक कार्यवाही दूषित हो जाती है, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और यह अस्थिर है। यदि उपरोक्त आधार पर पूरी आपराधिक कार्यवाही रद्द कर दी जाती है, तो उस मामले में, उसे एक ऐसे आरोपी को प्रीमियम दिया जाएगा, जिस पर अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध करने का आरोप है। यह मानते हुए कि अपनाई गई प्रक्रिया अनियमित है, उस मामले में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित पीड़ित को क्यों पीड़ित किया जाना चाहिए।

13. यहाँ तक कि उच्च न्यायालय द्वारा पूरे आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने और दरकिनार करने का विवादित निर्णय और आदेश भी

अस्थिर। अभियुक्तों के खिलाफ आरोप अपराधों [2021] 10 एस. सी. आर. के लिए थे।

अत्याचार अधिनियम के तहत अपराधों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता के तहत भी। विवादित निर्णय और आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने न केवल अत्याचार अधिनियम के तहत कार्यवाही को रद्द कर दिया है, बल्कि भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए भी कार्यवाही को रद्द कर दिया है, जो अनुमेय नहीं है। हम इस बात की सराहना करने में विफल हैं कि अत्याचार अधिनियम की धारा 14 पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को कैसे दरकिनार किया जा सकता था।

14. अब, जहाँ तक उच्च न्यायालय द्वारा पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करते हुए और दरकिनार करते हुए की गई टिप्पणी है कि

यदि शिकायत दर्ज करने में दो महीने की देरी का संबंध है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा देखते हुए, उच्च न्यायालय ने संबंधित अभिवचनों और यहां तक कि पीड़ित/शिकायतकर्ता की ओर से मामले को भी स्वीकार नहीं किया है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कथित अपराध की तारीख 6.9.2013 है। यह

पीड़ित की ओर से विशिष्ट मामला था कि अगले ही दिन 7.9.2013 पर प्राथमिकी दर्ज करने का प्रयास किया गया था। लेकिन एफ़. आई. आर. दर्ज नहीं की गई, शायद इसलिए कि आरोपी पुलिस अधिकारी थे। जो भी हो, यहां तक कि विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत 13.09.2013 पर दर्ज की गई थी और उसके बाद विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा 26.09.2013 पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के तहत एक आदेश पारित किए जाने के बाद, पुलिस ने प्राथमिकी दर्ज की और शुरू की

जांच पड़ताल की। इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि प्राथमिकी दो महीने की अवधि के बाद दर्ज की गई थी और वह भी बिना किसी स्पष्टीकरण के।

अन्यथा भी, एफ. आई. आर./शिकायत दर्ज करने में देरी के आधार पर, आपराधिक कार्यवाही को निम्न शक्तियों का प्रयोग करते हुए रद्द नहीं किया जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482। मुकदमे के दौरान और मुकदमे के दौरान देरी के पहलू पर विचार किया जाना आवश्यक है जब शिकायतकर्ता से शपथ पर पूछताछ की जाती है और देरी पर उससे सवाल किया जाता है और वह अपनी प्रतिपरीक्षा में देरी की बहुत अच्छी तरह से व्याख्या कर सकता है। लेकिन उपरोक्त आधार पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है।

15. अब, जहाँ तक उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत प्रतिबंध को देखते हुए और

कोई मंजूरी प्राप्त नहीं की गई थी, उपरोक्त भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए आधार नहीं हो सकता है। पुलिस अधिकारियों के खिलाफ शक्तियों के दुरुपयोग के गंभीर आरोपों को देखते हुए और यह आरोप लगाया जाता है कि शांताबेन भुवनेश्वर बनाम।

आनंद अथबाई चौधरी और ओआरएस। [एम. आर. शाह, जे.]

समाज में रहने वाले निर्दोष व्यक्तियों को पीटा गया और यहां तक कि

इससे पहले दिन शिकायतकर्ता/पीड़ित द्वारा फोन किया गया था कि समाज में चोर आ गए हैं और शिकायत की गई थी कि बार-बार ऐसी घटनाओं के बावजूद कुछ नहीं किया जा रहा है और वर्तमान मामले में कथित घटना आधी रात को हुई है जब फिर से पुलिस अधिकारी अतिरिक्त पुलिस कर्मचारियों के साथ गांव गए और आरोपी के खिलाफ आरोप दूसरी घटना के संबंध में हैं, यह बहुत बहस का विषय है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत शक्ति लागू होगी और जो कार्य आरोपी/पुलिस अधिकारियों द्वारा किए गए हैं, उन्हें आधिकारिक कर्तव्यों का हिस्सा कहा जा सकता है। इसलिए, इस स्तर पर, दंड संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना। प्रक्रिया अस्वीकार्य है। यह मानते हुए भी कि उच्च न्यायालय सही था कि धारा 197 के तहत मंजूरी के

अभाव में, कार्यवाही दूषित हो जाती है, उस मामले में, उच्च न्यायालय पूरी आपराधिक कार्यवाही को पूरी तरह से रद्द करने के बजाय प्राधिकरण को मंजूरी लेने और फिर आगे बढ़ने का निर्देश दे सकता था।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा दिनांकित 09.05.2019 का विवादित निर्णय और आदेश पारित किया गया

गुजरात के न्यायालय ने 2017 के विशेष आपराधिक आवेदन में भारतीय दंड संहिता की धारा 452,323,325,504 (2) और 114 के तहत और अत्याचार अधिनियम की धारा 3 (1) (x) के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 को निरस्त कर दिया गया है। अब अभियुक्त पर उपरोक्त अपराधों के लिए अधिकार क्षेत्र रखने वाले विद्वान विशेष न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाए। उपरोक्त को वर्तमान अपील की अनुमति है।

हद तक।

अपील

की अनुमति दी गई।

दिव्या पांडे